IMPACT FACTOR 5.397 (SJIF USA)
BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 3, Issue 4, October-December, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
ISSN : 3048-6971

प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालय: एक प्रकाश स्तंभ

डॉ0 मुस्तफा नवाज
सहायक प्राध्यापक, श्रम एवं समाज कल्याण
शेरशाह कॉलेज, सासाराम, बिहार

सारांश : भारतीय ज्ञान परम्परा की प्राचीन विश्व के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। प्राचीन भारत में शिक्षा को शुरू से ही महत्त्व दिया जाता था और ज्ञान की प्राप्ति पर सबसे अधिक बल था। तत्कालीन समय में अनेकों प्रकार की शिक्षण संस्थाएँ कार्यरत थीं, जिनमें गुरुकूल का सर्वोच्च स्थान था। उस समय भारत में शिक्षा के तीन महत्त्वपूर्ण उद्देश्य– ज्ञान की प्राप्ति, चरित्र का निर्माण तथा सामाजिक कर्त्तव्यों का निर्वहन थे। उस समय छात्रों को अनुशासित तौर पर गुरु के पास रहकर उनके उच्चादर्शों से प्रेरित और नैतिक गुणों को ग्रहण करना होता था। तत्कालीन भारत में लौकिक साहित्य, आयुर्वेद, व्याकरण, धनुर्वेद, अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र इत्यादि विषयों को विद्वान शिक्षकों द्वारा पढ़ाया जाता था। प्राचीन भारत में शिक्षा के अनेक छोटे–छोटे केन्द्र थे परन्तु तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी तथा उद्वन्तपुरी जैसे विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय भी अस्तित्व में आ गए थे, जो अपनी शिक्षा के प्रकाश से विश्व को प्रकाशित कर रहे थे। पाँचवी शताब्दी में कुमारगुप्त प्रथम द्वारा नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना तक तक्षशिला ही शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ अनेक विश्वविख्यात प्राध्यापक थे, जिनसे शिक्षा ग्रहण हेतु विश्व के कोने–कोने से विद्यार्थी भारत आते थे और यहाँ के ज्ञान को विश्व में प्रसारित करते थे। नालंदा विश्वविद्यालय के गौरव का इस बात से अंदाजा लगाया जा सकता है कि इसकी उपाधि के बगैर शिक्षा जगत में किसी भी विद्वान को महत्त्व नहीं दिया जाता था।

कुंजी शब्द : ज्ञान परम्परा, गुरुकूल, चरित्र निर्माण, ज्ञानार्जन, उच्चादर्श, आयुर्वेद, तर्कशास्त्र, सिरमौर।

तक्षशिला विश्वविद्यालय :

वर्तमान समय में तक्षशिला पाकिस्तान के पंजाब राज्य के रावलपिण्डी जिले में अवस्थित एक पुरातात्त्विक स्थल है, जो महाजनपद काल में गांधार की राजधानी एवं प्रमुख शैक्षिक केन्द्र था। इसकी स्थापना रघुकूल के प्रतापी राजा भरत ने की थी और इस शहर का नाम अपने पुत्र तक्ष के नाम पर तक्षशिला रखा था। भारत भ्रमण के दौरान चीनी यात्री फाहियान 405 ई0 में गुप्तशासक चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शासनकाल में इस शहर का भ्रमण किया था। तीन प्राचीन महामार्गों – उत्तरापथ, उत्तर–पश्चिम मार्ग तथा सिन्धु नदी मार्ग के संगम पर स्थित होने के कारण इसका व्यापारिक महत्त्व सर्वाधिक था। इस शहर के खण्डहरों की खोज भारतीय पुरातत्त्व के जनक अलेक्जेंडर कनिंघम ने की थी तथा इसकी खुदाई सर जॉन मार्शल के नेतृत्व में सम्पन्न हुई। इस स्थल को सन् 1980 ई0 में यूनेस्को की विश्वविरासत सूची में शामिल किया गया, परन्तु इसकी वास्तविक पहचान तक्षशिला विश्वविद्यालय के कारण है।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में तक्षशिला विश्वविद्यालय एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा केन्द्र के रूप में विख्यात हो चुका था। इस क्षेत्र में वैसे तो अनेकों छोटे–बड़े शैक्षिक केन्द्र अवस्थित थे जहाँ हजारों विद्यार्थी ज्ञानार्जन करते थे, परन्तु उच्चतर शिक्षा के लिए सर्वाधिक प्रमुख संस्थान तक्षशिला विश्वविद्यालय ही था, जहाँ भारत के विभिन्न राजाओं के पुत्रों के साथ–साथ विदेशी छात्र भी शिक्षा ग्रहण करते थे। जातक कथाओं के अनुसार राजगृह (मगध) के राजा बिम्बिसार तथा उसके विख्यात राजवैद्य जीवक की शिक्षा–दीक्षा तक्षशिला विश्वविद्यालय में हुई थी। साथ ही मगध महाजनपद के प्रतापी शासक अजातशत्रु और काशी नरेश के कई राजकुमार भी इसी विख्यात विश्वविद्यालय में रहकर शिक्षा प्राप्त किए थे। मिथिला और उज्जैनी के अतिरिक्त संसार के लगभग सभी कोनों से विद्यार्थी ज्ञानार्जन हेतु यहाँ आते थे तथा यहाँ से प्राप्त ज्ञान रूपी प्रकाश से विश्व को प्रकाशित करते थे। संस्कृत व्याकरण 'अष्टाध्यायी' के रचयिता पाणिनी की शिक्षा–दीक्षा भी इसी विश्वविद्यालय से हुई थी। कोसल महाजनपद के राजा प्रसेनजित, मल्ल गणराज्य के सरदार बंधुल, वैशाली के लिच्छवी गणराज्य के सरदार महालि तथा महर्षि वाल्मीकि (ब्राह्मण डकैत अंगुलिमाल) ने भी अपनी शिक्षा यहीं रहकर प्राप्त की थी। मगध निवासी विष्णुगुप्त (चाणक्य) यहीं के छात्र और प्राध्यापक थे, जिनके कूटनीतिक सहयोग से उनके शिष्य चन्द्रगुप्त मौर्य ने विशाल मगध साम्राज्य स्थापित किया तथा यूनानियों से पश्चिमोत्तर भारत को मुक्त कराकर एण्ड्रोकोट्टस कहलाया। कौटिल्य के नाम से प्रसिद्ध इसी चाणक्य ने 'अर्थशास्त्र' नामक पुस्तक में तत्कालीन शासन व्यवस्था, राजनीति, अर्थव्यवस्था तथा सैन्य रणनीति पर गहन प्रकाश डाला है जो वर्तमान परिस्थिति में भी तर्कसंगत तथा स्वीकार्य है।

तक्षशिला विश्वविद्यालय में आयुर्वेद, धनुर्वेद, व्याकरण, गणित, नृत्य, दर्शनशास्त्र, वाणिज्य, सर्पविद्या, हस्तिविद्या, संगीत, चित्रकला, अर्थशास्त्र इत्यादि विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। इतिहासकार, पुरातत्त्वविद् तथा मुद्राशास्त्री अनन्त सदाशिव अल्तेकर ने अपनी पुस्तक "Education in Ancient India" में लिखा है – ''तक्षशिला में आधुनिक महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय जैसी एक संगठित एवं समवेत् संस्था नहीं थी, अपितु वह विद्या का एक ऐसा केन्द्र था, जहाँ अलग–अलग छोटे–छोटे गुरुकूल होते थे और व्यक्तिगत रूप से विभिन्न विषयों के आचार्य अभ्यागत विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते थे''। तक्षशिला के प्रत्येक शैक्षिक संस्थानों में कभी–कभी 500–500 विद्यार्थी होते थे तथा उन्हें अलग–अलग विषय अलग–अलग गुरुओं द्वारा पढाए जाते थे। इसलिए उन्हें महाविद्यालय की संज्ञा देना अनुचित नहीं होगा। प्रतिकूल भौगोलिक स्थिति तथा आवागमन की असुविधा के

बावजूद राजगृह, पाटलिपुत्र, मिथिला, वैशाली, पावा, कुशीनारा, काशी, कोसल, उज्जयिनी, मध्यदेश तथा कुरू से छात्रों का अध्ययन हेतु यहाँ आने के कारण ही इसे तत्कालीन भारत की 'बौद्धिक राजधानी' कहा जाता था। यहाँ के प्रत्येक शिक्षक स्वयं में एक संस्था होते थे। यहीं कारण है कि उनको अपने क्षेत्र में पर्याप्त स्वायतता प्राप्त थी तथा वे स्वयं पाठ्यक्रम और उसकी कालावधि सुनिश्चित करते थे। प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक एवं बिम्बिसार के राजवैद्य जीवक की शिक्षा जब सातवें वर्ष पूर्ण हो गई, तो उनके गुरु आत्रेय ने उनकी व्यावहारिक ज्ञान की परीक्षा हेतु एक खुरपी देकर उन्हें तक्षशिलाा के चारों ओर औषधि के रूप में अनुपयुक्त पौधा खोजकर लाने का आदेश दिया। परन्तु तक्षशिला के चारों ओर भ्रमण करने के उपरान्त वह खाली हाथ वापस गुरु के पास पहुँचा तथा बताया कि उसे कोई ऐसा पौधा तक्षशिला के चारों दिशाओं में नहीं दिखा जिसमें औषधीय गुण न हो। जीवक के उत्तर से गुरु आत्रेय को विश्वास हो गया और वे जीवक को चिकित्सा सेवा से भरण–पोषण हेतु तक्षशिला से विदा कर दिए। यहीं जीवक मगध नरेश बिम्बिसार का राजवैद्य बना जो कालांतर में बौद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध एवं अवन्ति के राजा चण्ड प्रद्योत का सफल चिकित्सीय उपचार किया था।

तक्षशिला विश्वविद्यालय का अनुशासन अत्यन्त कठोर था। विश्वविद्यालय के नैतिक एवं सामाजिक परिवेश के अनुकूल नहीं ढलने वाले छात्रों को शिक्षा पूर्ण किए बगैर वहाँ से निष्कासित कर दिया जाता था। विद्यार्थी को उपाधि के रूप में लिखित प्रमाण–पत्र नहीं दिया जाता था। उनके द्वारा प्राप्त ज्ञान ही उनकी वास्तविक डिग्री होती थी, जिससे भविष्य में उनका जीविकोपार्जन होता था। बौद्ध साहित्य के अनुसार तक्षशिला विश्वविद्यालय तत्कालीन विश्व में धुनर्विद्या तथा शल्य चिकित्सा के लिए प्रसिद्ध था। यह अपनी ज्ञान पुंज से सम्पूर्ण संसार को आलोकित करने के लिए सदियों तक शिक्षा का प्रकाश स्तम्भ बना रहा।

प्राचीन तक्षशिला की स्थापना सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व में अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र राजा भरत ने की थी तथा इसका प्रशासक अपने ज्येष्ठ पुत्र तक्ष को बनाया था, जिसके नाम पर इस शहर का नाम तक्षशिला पड़ा। तीन महान मार्गों के संगम पर अवस्थित होने के कारण सुदूर क्षेत्रों के व्यापारी इस शहर को अपनी कर्मभूमि बना लिए तथा अपने बच्चों की शिक्षा के लिए विश्व के मशहूर शिक्षकों को यहाँ आमंत्रित किए। कालांतर में इन्हीं धनाढ्य व्यापारियों के सहयोग से तक्षशिला विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। वैदिक शिक्षा प्रणाली वाली गुरुकूल शिक्षा पद्धति का यह प्रमुख केन्द्र कालांतर में बौद्ध अध्ययन का मुख्य केन्द्र बन गया, जहाँ लगभग साढ़े दस हजार विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। साथ ही यह नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना तक विश्व के शैक्षिक संस्थानों का सिरमौर बना रहा।

प्राचीन भारत के तीन प्रमुख मार्गों – उत्तरापथ, उत्तर–पश्चिम मार्ग तथा सिंधु नदी मार्ग के संगम पर अवस्थित होने तथा अपनी रणनीतिक स्थिति के कारण तक्षशिला का इतिहास बार–बार अपना स्वामित्व बदलता रहा। सिकन्दर ने गांधार के राजा आम्भी के आमंत्रण पर ईसा पूर्व 326 में जब पश्चिमोत्तर भारत पर आक्रमण किया तो उसकी राजधानी तक्षशिला भी यूनानियों के अधीन हो गया। यद्यपि कुछ वर्षों बाद चन्द्रगुप्त मौर्य ने तक्षशिला को पुनः भारतीय मौर्य साम्राज्य का अंग बना लिया था, तथापि 185 ईसा पूर्व के बाद यह पुनः इण्डो–यूनानी, इण्डो–सिथियन तथा कुषाण साम्राज्य की अधीनता स्वीकारता रहा। गुप्त राजाओं ने चौथी शताब्दी में तक्षशिला को एक बार फिर भारतीय गुप्त साम्राज्य का हिस्सा बना लिया, परन्तु पाँचवी शताब्दी में हूणों ने अपने बर्बर आक्रमणों से तक्षशिला के गौरव और उसकी समृद्धि को समूल नष्ट कर दिया।

तक्षशिला विश्वविद्यालय के आचार्य निःस्वार्थ भाव से शिक्षण कार्य करते थे, फिर भी उनकी सुविधा के लिए आस–पास के कई राजा इस संस्थान को भरपूर आर्थिक मदद करते थे। विश्वविद्यालय में छात्रों का प्रवेश सार्वभौमिक था, बशर्ते छात्र उत्कृष्ट योग्यता रखता हो। दाखिले के लिए मौखिक परीक्षा होती थी, जिसमें छात्रों को प्रमाणित करना होता था कि वे शान्त, संयमी, एकाग्रचित तथा धैर्यवान हैं। विषयों का चुनाव छात्र अपनी रुचि एवं योग्यता के अनुरूप करते थे तथा शिक्षा पूरी होने पर छात्र गुरु दक्षिणा में पगड़ी, छाता अथवा अंगवस्त्र अपने गुरु को प्रतीकात्मक रूप में भेंट करते थे। इस प्रकार प्राचीन भारत में भी 'मुफ्त शिक्षा' की परिकल्पना की गई थी।

तक्षशिला विश्वविद्यालय में तत्कालीन विश्व के महान आचार्य अध्यापन कार्य करते थे, परन्तु उन आचार्यों का नाम किसी भी स्रोत से ज्ञात नहीं होना विडम्बना ही कहा जाएगा। इस विश्वविद्यालय के बारे में सर्वाधिक जानकारी देने वाले जातक ग्रंथ भी आचार्यों के नाम पर मौन दिखते हैं। यहाँ से पढ़कर निकले छात्र, जो पूरे संसार में अपनी कीर्ति से यश प्राप्त किए, वे भी अपने गुरु का नाम उजागर नहीं करते हैं, जिससे प्रतीत होता है कि यहाँ के आचार्य प्रसिद्धि की इच्छा न रखकर सेवा भाव से परिपूर्ण थे। यह विश्वविद्यालय राजा से रंक तक एक समान व्यवहार के लिए विख्यात था। संस्कृत व्याकरण ''अष्टाध्यायी'' के रचयिता पाणिनी, आयुर्वेद के प्रख्यात ग्रंथ ''चरक संहिता'' के लेखक तथा भारतीय चिकित्सा विज्ञान के पिता चरक इसी विश्वविद्यालय के छात्र थे। 'योग' दर्शन के जनक पतंजलि तथा कौटिल्य के नाम से विख्यात और ''अर्थशास्त्र'' के लेखक चाणक्य (विष्णु गुप्त), कुशीनगर के वंधुल मल्ल, वैशाली के महाली, प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक कौमार भृत्य तथा वसुबंधु भी इसी विश्वविद्यालय के छात्र रहे थे। मगध निवासी जीवक बिम्बिसार के भकन्दर का सफल इलाज कर पुरस्कार स्वरूप विम्बिसार का राजवैद्य बना था, जिसने कालांतर में महात्मा बुद्ध और अवन्ति के राजा चण्ड प्रद्योत का भी इलाज किया था। पंचतत्र के लेखक विष्णु शर्मा और सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की शिक्षा–दीक्षा भी इसी विश्वविद्यालय में हुई थी।

तक्षशिला द्वारा इण्डो–ग्रीक, इण्डो–सिथियन, पल्लव, कुषाण तथा हूणों के आक्रमण से स्वयं को सुरक्षित रखने का प्रयास असफल रहा। विदेशी आक्रमणकारियों का काल तक्षशिला एवं उसकी शिक्षा व्यवस्था के प्रतिकूल था। हूणों के आक्रमण ने तक्षशिला को समूल नष्ट कर दिया। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शासनकाल में जब फाह्यान का भारत में आगमन हुआ, उस समय तक्षशिला का अस्तित्व समाप्त हो चुका था। भारतीय पुरातत्त्व के जनक अलेक्जेंडर कनिंघम ने सन् 1863–64 में तक्षशिला के खण्डहरों की खोज की, जिसे विश्व का प्रथम विश्वविद्यालय होने का गौरव प्राप्त है तथा यूनेस्कों ने इसे 1980 में विश्व धरोहर स्थल, इसके उत्कृष्ट सार्वभौमिक मूल्यों के कारण घोषित किया था। तक्षशिला के छात्र रहे चरक एक प्राचीन भारतीय चिकित्सक तथा आयुर्वेद के जनक थे। उनकी प्रमुख रचना ''चरक संहिता'' में शल्य चिकित्सा, शरीर रचना विज्ञान, रोग नाशक तथा रोग निरोधक औषधियों का वर्णन है। आयुर्वेद निःसंदेह विश्व को भारत की अमूल्य देन है।

नालंदा विश्वविद्यालय :

बौद्ध शिक्षा का ऑक्सफोर्ड नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना गुप्त वंश के प्रतापी शासक कुमार गुप्त प्रथम ने पाँचवी शताब्दी में किया था। वह चक्रवर्ती सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का पुत्र था, जिसने पश्चिम में गुजरात से पूरब में बंगाल तक एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया था तथा शिक्षा में गहरी रुचि रखता था। यह उच्च शिक्षा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था, जहाँ उपधा परीक्षण (कठिन प्रवेश परीक्षा) में सफल मात्र बीस प्रतिशत छात्रों का नामांकन हो पाता था। यहाँ से प्राप्त उपाधि सम्पूर्ण विश्व के शिक्षा जगत में सम्मान का प्रतीक था। शिक्षा का यह महान केन्द्र वर्तमान बिहार राज्य के नालंदा जिले के राजगीर में अवस्थित था, जिसका खण्डहर आज भी विद्यमान है और यूनेस्को के विश्व विरासत सूची में 2009 ई0 से सम्मिलित है। यह मूलतः एक बौद्ध बिहार था जिसमें बौद्ध धर्म के महायान शाखा की शिक्षा प्रदान की जाती थी, परन्तु कालांतर में यह एक विश्वविद्यालय का स्वरूप धारण कर लिया, जिसे सम्पूर्ण भारत तथा भारतीय उपनिवेशों के शासकों द्वारा आर्थिक सहायता की जाती थी। ज्ञान की इस विश्वविख्यात मंदिर के विषय में जानकारी चीनी यात्री तथा बौद्ध भिक्षु ह्वेनसांग एवं इत्सिंग के यात्रा–वृत्तांत और विभिन्न अभिलेखों से मिलती है। प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय के शैक्षिक माहौल ने मोक्षदेव के नाम से प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग को काफी प्रभावित किया था। ह्वेनसाँग बौद्ध ग्रंथों की तलाश एवं ज्ञान की प्राप्ति हेतु चीन से रेशम मार्ग के रास्ते मध्य एशिया के समरकन्द, बुखारा, बामियान, कंधार, होते हुए कश्मीर (भारत), कपिलवस्तु, सारनाथ, कुशीनगर के बाद राजगीर के पास नालंदा विश्वविद्यालय पहुँचकर शीलभद्र जैसे विश्वविख्यात आचार्यों से बौद्ध धर्म की शिक्षा–दीक्षा प्राप्त कर अपने ज्ञान से चीन तथा अन्य पड़ोसी देशों को आलोकित किया। उसके अनुसार नालंदा विश्वविद्यालय विश्व का प्रथम आवासीय विश्वविद्यालय था, जहाँ छात्रों को मुफ्त भोजन, कपड़ा तथा दवाइयाँ दी जाती थी। यह काल भारतीय शिक्षा जगत का ''स्वर्ण काल'' था जिसने विश्व को अपनी ज्ञान पुंज से आलोकित किया।

प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय के खण्डहर नालंदा जिले में राजगीर के निकट अवस्थित है, जिसकी खोज भारतीय पुरातत्त्व के पिता के नाम से विख्यात अलेक्जेंडर कनिंघम ने की थी, जो लगभग 23 हेक्टेयर क्षेत्र में विस्तृत है तथा इसमें तीन सौ कक्ष, सात बड़े हॉल, दस मंदिर (चैत्य) तथा नौ मंजिला विशाल पुस्तकालय थे। प्राचीन ज्ञान और संस्कृति के केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित यह शैक्षिक संस्थान आज यूनेस्को का विश्व धरोहर स्थल है, जिसके नजदीक आधुनिक नालंदा अन्तरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति तथा मिसाइल मैन के नाम से प्रसिद्ध भारत रत्न डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के सलाह पर सन् 2014 में की गई थी, जिसके प्रथम कुलपति नोबल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन बने थे। प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय में लगभग दस हजार विद्यार्थी निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करते थे, जिसमें सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप के अतिरिक्त चीन, जापान, कोरिया, तिब्बत, कम्बोडिया, लाओस, वियतनाम, थाईलैण्ड, मंगोलिया, म्यांमार, इण्डोनेशिया तथा ताईवान के छात्र शामिल थे। छात्रों के सर्वांगीण विकास पर केन्द्रित गुणवतापूर्ण शिक्षा के कारण यहाँ के प्राध्यापक एवं छात्र अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान शीघ्र ही बना लेते थे तथा नालंदा से निकली ज्ञान की ज्योति समस्त संसार को प्रकाशित करती थी। लगभग सात सौ वर्षों तक नालंदा विश्वविद्यालय वैश्विक शिक्षा जगत् के लिए प्रकाश स्तम्भ बना रहा। यहीं कारण था कि विश्व के लगभग सभी देशों से विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने हेतु नालंदा आते थे।

मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के पूर्व तक नालंदा विश्वविद्यालय शिक्षा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बना रहा तथा तत्कालीन विश्व में कोई भी शैक्षिक संस्थान इसकी भव्यता का मुकाबला नहीं कर सकता था। यहाँ व्याख्यान कक्ष के अतिरिक्त आचार्यों एवं छात्रों के लिए भव्य निवास गृह भी बनाए गए थे। आस–पास के लगभग दो सौ गाँवों के लोग अपनी सेवा इस लब्धप्रतिष्ठ संस्थान को बारी–बारी से उपलब्ध कराने के लिए सदैव तैयार रहते थे। मोक्षदेव के नाम से प्रसिद्ध चीनी बौद्ध यात्री ह्वेनसाँग ने लिखा है– ''विद्यार्थियों की चारों प्रमुख आवश्यकताओं– खाना, कपड़ा, बिस्तर और दवा की आपूर्ति इतनी आसानी से हो जाती थी कि उन्हें इसके बारे में सोचने की जरूरत नहीं पड़ती थी''। यहाँ दस हजार छात्र बौद्ध साहित्य की विभिन्न शाखाओं के साथ–साथ दर्शनशास्त्र (सांख्य, योग, न्याय), अथर्ववेद, आयुर्वेद, व्याकरण तथा चिकित्सा शास्त्र का समग्र अध्ययन करते थे तथा प्रतिदिन लगभग एक सौ वर्ग (कक्षा) संचालित होते थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय धर्मकीर्ति, शीलभद्र, असंग, वसुबंधु, वज्रबोधि, धर्मपाल, नागार्जुन इत्यादि भिक्षुक आचार्यों के बदौलत

एशिया का ज्ञान पुंज अथवा ज्ञान स्तंभ कहलाया। 'यात्रियों का राजकुमार' के नाम से प्रसिद्ध ह्वेनसाँग तथा ''भारत एवं मलय द्वीपपुंज में प्रचलित बौद्ध धर्म का विवरण'' नामक यात्रा–वृत्तांत के लेखक चीनी यात्री इत्सिंग जैसे विदेशी छात्र इसकी कीर्ति को भारतीय उपमहाद्वीप से बाहर प्रसार में मील का पत्थर साबित हुए। ह्वेनसाँग ने नालंदा के अपने पूर्ववर्ती छात्रों के विषय में जैसा लिखा है, वैसे लोग प्रत्येक देश एवं प्रत्येक काल में पैदा नहीं होते हैं। उन्होंने अपनी यात्रा वृत्तांत ''सी–यू–की'' में लिखा है – ''यहाँ क्षत्रिय और ब्राह्मण पवित्र हैं तथा उनमें थोड़ा सा भी दिखावा नहीं है। उनका जीवन सरल, सादा तथा मितव्ययी है। यहाँ का सामान्य व्यक्ति भी कृपण बुद्धि के बावजूद स्पष्टवादी और महत्त्वाकांक्षी हैं''। इसके आचार्य धर्मकीर्ति एक प्रमुख बौद्ध दार्शनिक थे, जिन्होंने 'प्रमाणवर्तिका' की रचना की जो तिब्बती बौद्ध मठों में आज भी अध्ययन तथा शोध का जीवंत विषय बना हुआ है। आचार्य धर्मकीर्ति को तर्कशास्त्र का ज्ञान उनके गुरु ईश्वरसेन से प्राप्त हुआ था परन्तु उनके दीक्षागुरु नालंदा के प्रसिद्ध आचार्य धर्मपाल थे जिन्हें वसुबंधु का शिष्य बताया गया है। इस प्रकार नालंदा ज्ञान का समृद्ध विरासत अपने पास संजो कर रखा, जिसके ज्ञान की ज्योति से सम्पूर्ण संसार लगभग सात सौ वर्षों तक प्रकाशित होता रहा।

धर्मपाल के शिष्य शीलभद्र नालंदा महाविहार के मठाधीश तथा एक प्रमुख बौद्ध दार्शनिक थे, जिन्होंने दक्षिण भारत के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण आचार्य को शास्त्रार्थ में पराजित कर मगध के राजा से पुरस्कृत हुए थे। शीलभद्र बंगाल के एक शिक्षित ब्राह्मण शाही परिवार से थे, जिन्होंने भारत के विभिन्न स्थानों की यात्रा के पश्चात नालंदा के आचार्य धर्मपाल से बौद्ध धर्म की शिक्षा–दीक्षा प्राप्त की तथा बाद में नालंदा विश्वविद्यालय के कुलपति भी बने। नालंदा में 'शीलभद्र विहार' उन्हीं के नाम पर बना था जिसके रख–रखाव का खर्च मगध के राजा से पुरस्कार स्वरूप प्राप्त नगर के राजस्व से चलता था। चीनी बौद्ध भिक्षु ह्वेनसाँग शीलभद्र का शिष्य था, जिसे सिलाव को शीलभद्र का जन्म स्थान बताया है। बौद्ध शिक्षा और दर्शन के प्रसार में शीलभद्र का योगदान अद्वितीय रहा है। असंग और वसुबंधु सौतेले भाई तथा बौद्ध धर्म के महान विद्वान थे। वसुबंधु को नालंदा विश्वविद्यालय का दूसरा कुलपति माना जाता है। उन्होंने बौद्ध ग्रंथ ''अभिधम्मकोशकारिका'' की रचना संस्कृत में की थी, जो अभिधर्म के सिद्धान्तों को सुव्यवस्थित रूप प्रदान करता है। वे अपने बड़े भाई असंग से प्रेरित होकर महायान को अपनाए तथा अपना शेष जीवन साकल, कौशाम्बी तथा अयोध्या में व्यतीत किए। उन्होंने बौद्ध धर्म को तार्किक और दार्शनिक आधार देकर सम्पूर्ण एशिया में बौद्ध धर्म के प्रसार का मार्ग प्रशस्त किया। वे गुप्त सम्राट कुमारगुप्त प्रथम तथा स्कन्दगुप्त के काल में असंग के साथ योगाचार (विज्ञानवाद) के संयुक्त प्रवर्तक बने जो 'केवल मन' के सिद्धान्त पर आधारित है। गांधार प्रदेश में जन्मे असंग वसुबंधु के बड़े भाई, योगाचार के संस्थापक तथा महायान शाखा के प्रमुख आचार्य थे, जिन्हें बौद्ध न्याय का आदिगुरु भी माना जाता है। आधुनिक बरार (विदर्भ) में जन्में नागार्जुन 'शून्यवाद' के प्रतिष्ठापक तथा नालंदा विश्वविद्यालय के प्रमुख बौद्ध आचार्य थे। उनके अनुसार – ''इस संसार में कोई भी चीज स्थाई अथवा स्वतंत्र नहीं है, बल्कि सब कुछ एक–दूसरे पर निर्भर करता है''। इस प्रकार इस संसार में सब कुछ परिवर्तनशील है। उन्होंने परम सत्य (परमार्थ) और सांसारिक सत्य (व्यवहार) को समझाया। उनका मध्यम मार्ग न तो चीजों को पूर्ण स्थायी मानता है और न पूरी तरह से अस्तित्वहीन। नार्गाजुन को बौद्ध धर्म के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान के कारण ''द्वितीय बुद्ध'' भी कहा जाता है। उन्होंने बताया कि वस्तुओं की क्षणभंगुरता की समझ ही मानव को मुक्ति की ओर अग्रसर करता है तथा इसी समझ से करूणा और ज्ञान का मार्ग भी सदा प्रशस्त होता है।

नालंदा विश्वविद्यालय के भवन प्राचीन भारतीय वास्तुकला के उत्कृष्ट नमूना तथा समृद्ध परम्परा का प्रतिनिधित्व करते थे, जो लाल ईंटों से निर्मित तथा कलात्मक सजावट के कारण भव्य तथा शोभायमान (सुशोभित) लगते थे, जिनका निर्माण कई बौद्ध शासकों ने कराया था। इनमें भारतीय उपनिवेश सुमात्रा (इण्डोनेशिया) के राजा बालपुत्र देव तथा श्रीलंका के राजा मेघवर्मन प्रसिद्ध हैं। बालपुत्र देव ने नालंदा में जावा एवं सुमात्रा के बौद्ध भिक्षुओं के आवासन हेतु एक वृहत बौद्ध विहार का निर्माण कराया था तथा इसके रख–रखाव के लिए पाल शासक देवपाल से पाँच गाँव का राजस्व सहयोग हेतु माँगकर इस महाविहार को दिया था। इस महाविहार में तीन पुस्तकालय– रत्नसागर, रत्नरंजक तथा रत्नोदधि थे, जिनका निर्माण महाराजा बालादित्य ने कराया था। श्रीलंका के राजा मेघवर्मन ने नालंदा से कुछ दूर ताराडीह में एक विशाल बौद्ध महाविहार का निर्माण भिक्षुकों के रहने के लिए कराया था। चीनी बौद्ध संन्यासी ह्वेनसाँग नालंदा विश्वविद्यालय की भव्यता से मंत्रमुग्ध था। सभागृह के चारों ओर ऊँचे– ऊँचे मठ तथा विहार (भिक्षुकों के निवास गृह) इसकी शोभा बढ़ा रहे थे। व्याख्यान गृहों के चारों ओर आचार्यों तथा बौद्ध भिक्षुकों के विश्राम हेतु चार मंजिला इमारतें भी बनी थी। साथ ही ऊँची मीनारों तथा बहुमंजिला भवनों में बहुमूल्य रत्न उनकी भव्यता में चार चाँद लगा रहे थे। नौ मंजिला केन्द्रीय पुस्तकालय 90 लाख हस्तलिखित पांडुलिपियों तथा पुस्तकों से भरा था, जिससे दस हजार विद्यार्थी तथा डेढ़ हजार आचार्य ज्ञान को एक साथ आत्मसात् करते थे। यह बौद्ध ज्ञान का विश्व का सर्वाधिक बड़ा भण्डार था जो इसकी भव्यता का प्रतीक है। तुर्क आक्रमणकारी बख्तियार खिलजी ने जब 1193 ई0 में इस पुस्तकालय में आग लगा दी, तो इसकी किताबें तथा पांडुलिपियाँ तीन महीनों तक लगातर जलती रहीं, जो इसके वैभव को प्रदर्शित करती है।

नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना बौद्ध धर्म की शिक्षाओं के प्रसार के लिए बौद्ध महाविहार के रूप में किया गया था, जिसकी मुख्य विशेषता ज्ञान प्राप्ति की स्वतंत्रता थी, जहाँ सभी धर्मों के छात्रों को उनकी रुचि एवं योग्यता के अनुसार शिक्षा प्रदान की जाती थी, जो आधुनिक 'बाल केन्द्रित' शिक्षा का पूर्वगामी था। यहाँ छात्र अपने गुरु के सानिध्य में शीघ्र ही ज्ञान से परिपूर्ण तथा

वैश्विक ख्याति प्राप्त कर लेते थे। समुद्र के रास्ते ताम्रलिप्ति (ओडिशा) होते हुए नालंदा पहुँचे तिब्बती यात्री इत्सिंग ने दस वर्षों तक नालंदा विश्वविद्यालय में रहकर संस्कृत और बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन कर चार सौ से अधिक बौद्ध ग्रन्थ अपने साथ तिब्बत लेकर गया तथा वहाँ पचास से अधिक बौद्ध ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद कर भारतीय ज्ञान का प्रचार–प्रसार किया जिससे नालंदा को एशिया के शिक्षा जगत का प्रकाश स्तंभ बनने में मदद मिली। नालंदा विश्वविद्यालय का ज्ञान पुंज चीन के रास्ते वियतनाम, मंगोलिया, ताईवान, जापान, फिलिपींस, कम्बोडिया, थाइलैण्ड तथा लाओस तक प्रकाशित किया।

नालंदा विश्वविद्यालय की कार्य संस्कृति एक नियमित संस्था के समान थी, जहाँ से प्राप्त अधिकांश मुहरों पर ''श्री–नालंदा–महाविहार–गुणाकर–बुद्ध–भिक्षुणाम्'' और ''धर्मचक्र'' अंकित है। नालंदा महाविहार में अनुशासन पर सर्वाधिक बल था, जहाँ खाना खाने से पहले और बाद में मुँह, हाथ और पैर धोने की परम्परा विद्यमान थी। साथ ही सुबह में छात्रों तथा आचार्यों को सैर के लिए निकलना अनिवार्य था ताकि उनका स्वास्थ्य उत्तम रहे। इत्सिंग के अनुसार – ''भारत को आर्य–देश कहा जाता था, क्योंकि यहाँ श्रेष्ठ चरित्र के लोग हमेशा जन्म लेते थे। आचार्य गलती होने पर शिष्यों को प्रायश्चित हेतु बाध्य करते थे। साथ ही छात्र के बीमार पड़ने पर आचार्य औषधि लाकर उन्हें देते थे तथा उनके साथ पुत्रवत् व्यवहार करते थे''। इत्सिंग के अनुसार, छात्र अश्वघोष के ''सूत्रालंकार'', गयादित्य के ''काशिकावृत्ति'' को आत्मसात् करने के उपरान्त ही तर्कशास्त्र तथा अध्यात्मविद्या का अध्ययन प्रारंभ करते थे। भर्तृहरि अपनी पुस्तक ''भर्तृहरिशास्त्र'' में मानव जीवन के सिद्धान्त तथा परिवार के उत्थान–पतन से सम्बंधित परिस्थितियों का बेबाक रूप से उल्लेख करने के कारण समस्त भारत में प्रसिद्ध थे। नालंदा विश्वविद्यालय का पतन ही भारत में बौद्ध धर्म के ह्रास का मुख्य कारण बना।

नालंदा विश्वविद्यालय एशिया सहित सम्पूर्ण विश्व को अपने ज्ञानपुंज से लगभग सात सौ वर्षों तक प्रकाशित करता रहा। तुर्क सेनापति बख्तियार खिलजी के बर्बर आक्रमण का मुख्य कारण वहाँ बौद्ध धर्म की शिक्षा के स्थान पर इस्लाम धर्म की शिक्षा का प्रचार–प्रसार कराना था, जिसे नालंदा के कुलपति द्वारा नहीं माना गया। कुछ विद्वानों के अनुसार जब बख्तियार खिलजी के बीमार होने पर उसके वैद्य ठीक नहीं कर पाए और नालंदा महाविहार के चिकित्सा से वह स्वस्थ हो गया, तो उसने इस्लामी ज्ञान परम्परा पर भारतीय ज्ञान परम्परा के वर्चस्व को बर्दाश्त नहीं कर पाया और इसके अस्तित्व को पूर्ण रूप से मिटाने के लिए इसमें आग लगाकर जला दिया, जिससे नालंदा विश्वविद्यालय का नौ मंजिला पुस्तकालय तथा उसमें 90 लाख से अधिक रखे हस्तलिखित पांडुलिपिया कई महीनों तक जलती रहीं और नालंदा विश्वविद्यालय का गौरवशाली इतिहास खण्डहरों में तब्दील हो गया।

महान खगोलशास्त्री एवं गणितज्ञ आर्यभट्ट नालंदा विश्वविद्यालय के छात्र थे, जिन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''आर्यभट्टीय'' में सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, ग्रहों की गति तथा ऋतुओं के विषय में विस्तार से लिखा है, परन्तु दुर्भाग्य से ग्रहों की गति की खोज का श्रेय जर्मन खगोलशास्त्री और गणितज्ञ जोहांस केपलर को पश्चिमी सभ्यता ने दे दिया। आर्यभट्ट ने ही सर्वप्रथम पाई (π) का मान 3.1416 बताया, जिसकी अनन्त प्रकृति ब्रह्माण्ड के गोल और घुमावदार चीजों के व्यवहार को समझाने में मदद करती है। साथ ही π वृत्तों एवं गोल आकृतियों के क्षेत्रफल, परिधि तथा ग्रहों की गति जानने में सहयोग करता है। आर्यभट्ट की गणनाओं एवं विभिन्न सिद्धान्तों ने भारतीय विज्ञान के साथ–साथ विश्व के वैज्ञानिकों को भी प्रेरित किया। शून्य की खोज और गणित में उसका उपयोग आर्यभट्ट की देन है। दशमलव प्रणाली भी उसी ने आर्यभट्टीय में दिया है। ''आर्यभट्ट की साइन तालिका'' विश्व को आर्यभट्ट की प्रमुख देन है। शून्यवाद के संस्थापक नागार्जुन बौद्ध धर्म के इतिहास में महात्मा बुद्ध के बाद सर्वाधिक प्रसिद्ध विचारक हैं जिनके ''मूलमध्यमकारिका'' में सन्निहित विचार यूरोपीय विचारकों से कमतर नहीं हैं। वे नालंदा विश्वविद्यालय के एक ऐसे चमकते सितारे थे, जिन्होंने अपने ज्ञान और दर्शन से पाश्चात्य जगत् को भी आलोकित किया।

संदर्भ :

1. मजूमदार, रमेशचन्द्र (2002) प्रचीन भारत, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं0 400–403, 157–159
2. महाजन, बी.डी. (2013), प्राचीन भारत का इतिहास, एस.चन्द एण्ड कम्पनी प्रा.लि., नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 200–250
3. पाण्डेय, श्रीनेत्र (2009), प्राचीन भारत का इतिहास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 39–54
4. पानिकर, के.एम. (1932) श्री हर्ष ऑफ कन्नौज, लाइफ स्पैन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, मुम्बई, पुष्ठ – 27
5. झा, द्विजेन्द्र नारायण एवं श्रीमाली, कृष्णमोहन (2017), प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यांवयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 309–336
6. घोष, अमलानन्द (1939), ए गाइड टु नालंदा, भारतीय पुरातत्त्व संरक्षण, नई दिल्ली।
7. संकालिया, एच.डी.(2023), द यूनिवर्सिटी ऑफ नालंदा, हैसल प्रेस, चेन्नई।
8. नवाज, डॉ.मुस्तफा (2025), भारतीय ज्ञान परम्परा : वैश्विक विरासत (सम्पादित), कनिष्क पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ सं0 26–39
9. पाण्डेय, धनपति (1998), प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 191
10. मुंशी, के.एम. तथा मजुमदार, आर.सी. (1984), भारतीय जनता का इतिहास और संस्कृति, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 470
11. महाजन, बी.डी. (2013), प्राचीन भारत का इतिहास, एस.चन्द एण्ड कम्पनी प्रा.लि., नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 230–236, पृष्ठ 269, पृष्ठ 296, पृष्ठ 337, पृष्ठ 407–409